Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 6 | ISSN : 2581- 6306

महाकवि कालिदास के महाकाव्यों में विलाप

डॉ0 शान्ति लाल सालवी
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, महिला महाविद्यालय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

Article Info
Volume 4, Issue 6
Page Number : 66-71
Publication Issue :
November-December-2021
Article History
Received : 15 Nov 2021
Published : 30 Nov 2021

शोध सारांश- महाकवि कालिदास के श्रव्य काव्य कुमारसम्भव और रघुवंश में यत्र-तत्र करुण रस की पुष्टि हुई है। एक ओर हम रघुवंश में महाराज 'अज' को अपनी प्रेयसी इन्दुमती के वियोग में विलाप करते हुए देखते हैं, तो दूसरी ओर कुमारसम्भव में 'रति' अपने प्रियतम 'कामदेव' के लिए कुररी के समान करुण क्रन्दन करते हुए दिखाई देती हैं। 'रससिद्ध कवीश्वर' ने स्नेह के दोनों ही आलम्बनों को लेकर करुण-रस की सफल अभिव्यंजना की है। इस प्रकार महाकवि कालिदास ने अपने दोनों अमर महाकाव्यों कुमारसम्भव एवं रघुवंश में रति विलाप एवं अज विलाप के माध्यम से करुण रस की साफल्येन पुष्टि की है।

मुख्य शब्द- महाकवि कालिदास, कुमारसम्भव, रघुवंश, रति, विलाप, करुण रस।

यद्यपि रस का विवेचन भरतमुनि से पूर्व भी होता रहा होगा फिर भी आज भरत का नाट्यशास्त्र ही इस विषयक आदिग्रन्थ है। भरत से पूर्व रस विवेचन की अवश्य ही दीर्घ परम्परा रही होगी जिसे भरत ने नाट्यशास्त्र में व्यवस्थित रूप से उपस्थित किया। नाट्यशास्त्र में स्थान-स्थान पर उद्धृत आनुवश्य श्लोक इस बात का प्रबल प्रमाण है कि भरत से पूर्व शिष्य-प्रशिष्य परम्परा के माध्यम से रस की चर्चा चल रही थी। **"राजशेखर के साक्ष्य के अनुसार रस के प्रवर्तक नन्दिकेश्वर थे।"**[1] आचार्यों ने रसों की संख्या 8 से 11 तक मानी है। परन्तु इनमें भी आचार्यों ने कुछ रसों को प्रधान तथा कुछ को गौण माना है।

वस्तुत: करुणा को ही करुण रस की जननी स्वीकार किया गया है। दु:ख के संवेग से ही उत्तम कृतियों की सृष्टि होती है। यथा क्रौंचवध के शोक से सन्तप्त महर्षि वाल्मीकि ने चिरस्थायी रामायण का निर्माण किया-

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती: समा:।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी: काममोहितम्।।[2]

आनन्दवर्धन ने इस श्लोक को ही काव्य की आत्मा माना है-

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवे: पुरा।
क्रौंचद्वन्द्ववियोगोत्थ: शोक: श्लोकत्वमागत:।।[3]

लौकिक जीवन का श्लोक उस करुण-रस की अलौकिक अनुभूति से सर्वथा भिन्न है; क्योंकि लौकिक रत्यादि स्थायीभाव तथा रसरूपता को प्राप्त करने वाले सहृदयनिष्ठ अलौकिक रत्यादि भाव पूर्णतया भिन्न हैं। अत: करुण-रस का स्थायीभाव 'शोक' इस लौकिक जीवन में विद्यमान 'शोक' से भिन्न है। इस भिन्नता का कारण भक्तिरसायन में निम्न रीति से किया है-

काव्यार्थनिष्ठा रत्याद्या: स्थायिन: सन्ति लौकिका:।
तद्वोद्धृनिष्ठात्वपरे तत्समा अप्यलौकिका:।।[4]

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

अर्थात् काव्य में रामादि आश्रयों में निरूपित किए जाने वाले रत्यादि लौकिक हैं; किन्तु रसास्वाद के समय सहृदय में उद्बुद्ध संस्कार रूप इत्यादि अलौकिक है। वस्तुत: यह करुण-रस इष्ट के नाश और अनिष्ट की प्राप्ति से निष्पन्न होता है तथा 'शोक' स्थायीभाव से युक्त होता है जैसा कि भरतमुनि ने कहा है-

"अथ करुणो नाम शोकस्थायिभावप्रभव:। स च शापक्लेशविनिपतितेष्टजनविप्रयोग विभवनाशवधबन्धविद्रवोपघातव्यसनसंयोगा-दिभिर्विभावै: समुपजायते।[5]

शोक के चित्रण से सहृदयों को करुण रस का आस्वादन हुआ करता है, अत: सहृदयगण इसे देखने के लिए सदा लालायित रहते हैं-

करुणादावपि रसे जायते यत्परं सुखम्।
सचेतसामनुभव: प्रमाण: तत्र केवलम्।
किंच तेषु यदा दु:खं न कोऽपि स्यात्तदुन्मुख:।
तदा रामायणादीनां भविता दु:खहेतुता।।[6]

करुण-रस का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। अत: महाकवियों ने अपनी रचनाओं में करुण-रस को अंग अथवा अंगी के रूप में स्थान दिया है। संस्कृत साहित्य में कालिदास को विशेषकर प्रेम और श्रृंगार-रस का ही प्रतिनिधि कवि माना जाता है। किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। महाकवि कालिदास की प्रतिभा को यहीं तक सीमित करना उनके साथ अन्याय करना ही होगा। उनका ‘कविकुलगुरु’ विशेषण ही इस बात का द्योतक है कि वे श्रृंगार-रस ही नहीं अपितु सभी रसों के आचार्य थे।

महाकवि कालिदास के श्रव्य काव्य कुमारसम्भव और रघुवंश में यत्र-तत्र करुण रस की पुष्टि हुई है। एक ओर हम रघुवंश में महाराज ‘अज’ को अपनी प्रेयसी इन्दुमती के वियोग में विलाप करते हुए देखते हैं, तो दूसरी ओर कुमारसम्भव में ‘रति’ अपने प्रियतम ‘कामदेव’ के लिए कुररी के समान करुण क्रन्दन करते हुए दिखाई देती हैं। इस प्रकार उस ‘रससिद्ध कवीश्वर’ ने स्नेह के दोनों ही आलम्बनों को लेकर करुण-रस की सफल अभिव्यंजना की है।

कुमारसम्भव के चतुर्थ सर्ग में कारुणिक प्रसंग की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। कुमारसम्भव का रति-विलाप समग्र संस्कृत साहित्य में ही नहीं प्रत्युत विश्व साहित्य में अप्रतिम है। कुमारसम्भव का अंगीरस श्रृंगार-रस है किन्तु चतुर्थ सर्ग में करुण-रस का यथेष्ट रूप से परिपाक हुआ है। कुमारसम्भव का चतुर्थ सर्ग रति के करुण-विलाप से परिपूर्ण है। भगवान् शिव के तृतीय नेत्र से उत्पन्न अग्नि से भस्मावशेष मदन को देखकर पतिप्राणा रति बेसुध हो जाती है। जब उसमें चेतना आती है तब वह देखती है कि अपने समक्ष पुरुषाकार भस्म का ढेर पड़ा है। यह देखकर शोक विह्वल होकर विलाप करने लगती है। उसकी केशावली बिखर जाती है और उसका विलाप सुनकर समस्त वन रो उठता है। मदन के अनेक गुणों का तथा उसके प्रणय विलासों का स्मरण करके हृदय विदारक विलाप करती है-

‘‘अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधालिंगनधूसरस्तनी।
विललाप विकीर्णमूर्धजा समदु:खामिव कुर्वती स्थलीम्।।’’[7]

अर्थात् जब रति को चेतना प्राप्त होती है तब वह शोक विह्वल होकर धरती पर लौटने लगी, जिससे उसके स्तन धूलि से धूसरित हो गए। वह अपने बालों को बिखेर कर विलाप करने लगी और इस प्रकार उसके विलाप से वह वनस्थली भी उसके इस दु:ख में समान दु:खी वाली सी बन गई।

मर्म-स्थल को विदीर्ण कर देने वाली इस दारुण अवस्था में भी मैंने प्राण-त्याग नहीं किया है, ऐसा सोचती हुई वह स्त्री जाति को उलाहना देते हुई कहती है कि वास्तव में स्त्रियों का हृदय कठोर होता है। वह कहती है कि जैसे जल का प्रवाह, बाँध टूट जाने पर जल के अधीन ही जीवित रहने वाली कमलिनी को छोड़कर तेजी से चला जाता है, उसी प्रकार केवल तुम्हारे ही आश्रय पर जीवित रहने वाली मुझ अभागिन से नाता तोड़कर तुम कहाँ चले गए हो?

‘‘क्व नु मां त्वदधीन-जीवितां विनिकीर्य क्षणभिन्नसौहृद:।
नलिनीं क्षत-सेतु-बन्धनो जलसंघात इवासि विद्रुत:।।’’[8]

रति अपने प्रणयकालीन समय को याद करती है जिससे उसका शोक उतरोत्तर बढ़ता ही जाता है। वह विलाप करती हुई कहती है कि हे कामदेव! मैंने तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल कोई कार्य ही नहीं किया; कभी तुम्हारी कोई अनसुनी नहीं की, फिर अकारण ही मुझे दर्शन क्यों नहीं देते-

''कृतवानसि विप्रियं न मे प्रतिकूलं न च ते मया कृतम्।
किमकारणमेव दर्शनं विलपन्त्यै रतये न दीयते।।''[9]

इस प्रकार रति अपनी अतीत की घटनाओं का स्मरण करती है जो कि उसकी शोकाग्नि को प्रदीप्त करने में घृत का कार्य करती है। शोकाकुल रति कामदेव को पुन: उलाहना देती हुई कहती है कि हे कामदेव! तुम कहा करते थे कि तुम (रति) मेरे हृदय में निवास करती हो। मैं अब समझ रही हूँ कि यह तुम्हारा छल था। यदि ऐसा न होता तो यह कैसे सम्भव था कि तुम्हारा भस्मशेष हो जाने पर भी मैं कैसे इस प्रकार जीवित रहती?-

''हृदये वससीति मत्प्रियं यदवोचस्तदवैमि कैतवम्।
उपचार-पदं न चेदिदं त्वमनंग: कथमक्षता रति:।।''[10]

वास्तव में रति की इस दारुण-कारुणिक दशा को देखकर सहृदय ही नहीं; अपितु पत्थर हृदय भी मोम की तरह पिघल जाता है। जब कामदेव ने रति की दाएँ पैर में ही महावर लगाया था तब उसी समय देवताओं ने शंकर भगवान् का ध्यान भंग करने के लिए कामदेव को बुला लिया और रति का बायाँ पैर आलक्तविहीन ही रह गया। आलक्तविहीन अपने उस पद को देखकर रति विलाप करती हुई कह रही है कि प्रिय! मेरे बाएँ चरण पर आकर महावर लगा दो-

''विबुधैरसि यस्य दारुणैरसमाप्ते परिकर्मणि स्मृत:।
तमिमं कुरु दक्षिणेतरं चरणं निर्मितरागमेहि मे।।''[11]

रति को इस प्रकार फूट-फूट कर रोती हुई देखकर कौन ऐसा हृदयहीन व्यक्ति होगा जो द्रवित न हो उठेगा और उस अभागिनी के दुर्भाग्य पर थोड़ी देर के लिए दो आँसू न बहा देगा। कामदेव के भस्मीभूत होने के बाद वसन्तक को वहाँ आया देखकर रति फूट-फूट कर रोती है। वस्तुत: अपने प्रिय से सम्बन्धित व्यक्तियों या वस्तुओं को देखकर शोक उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। वसन्तक से कहती है कि-

''तदिदं क्रियतामनन्तरं भवता बन्धुजनप्रयोजनम्।
विधुरां ज्वलनातिसर्जनान्नु मां प्रापय पत्युरन्तिकम्।।''[12]

अर्थात् हे वसन्तक तुम मेरे लिए अग्नि प्रज्वलित करो और मुझे पति के पास भेज दो क्योंकि मित्र की स्त्री को उसके पति के पास पहुँचाना ही सुहृदों का कर्तव्य है।

रति कहती है कि ''चाँदनी चन्द्रमा के साथ अस्त हो जाती है और बिजली मेघ के साथ ही विलीन हो जाती है। यह तथ्य तो अचेतन भी समझते हैं कि स्त्रियों को अपने पति के मार्ग का ही अनुगमन करना होता है-

''शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित्प्रलीयते।
प्रमदा: पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनै-रपि।।''[13]

इस प्रकार रति रो-रोकर वसन्तक से चिता बनवाकर उसमें अग्नि प्रदीप्त करने के लिए अनुनय-विनय करती है। वह कहती है कि हम दोनों का साथ ही तर्पण करना और श्राद्ध हेतु कामदेव के लिए आम्रमंजरी अवश्य लाना क्योंकि वह कामदेव को बहुत प्रिय थी-

''परलोकविधौ च माधव स्मरमुद्दिश्य विलोलपल्लवा:।
निवपे: सहाकरमंजरी: प्रियचूतप्रसवो हि ते सखा।।''[14]

इस तरह महाकवि कालिदास ने अद्भुत सफलतापूर्वक नारी हृदय के शोक को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। कालिदास को कोमल नारी-हृदय की गहरी पहचान थी। कालिदास नारी के शोक को बड़े ही चतुराई से प्रकट किया है जो अत्यन्त स्वाभाविक है।

करुण-रस के परिपाक में यहाँ रति आश्रय है, कामदेव का मृत शरीर आलम्बन है, रति द्वारा उसका गुणकथन, पूर्ववृत्तस्मरणादि उद्दीपन है; विलाप, भूमि पर लौटना आदि अनुभाव हैं तथा मूर्च्छा, सन्ताप आदि संचारीभाव हैं तथा ''शोक'' स्थायीभाव है। अत: रति विलाप में करुण-रस की प्रधानता है।

महाकवि कालिदास ने जिस तरह कुमारसम्भव में करुण-रस की पुष्टि के लिए नारी (रति) की व्यथा को चित्रित किया है उसी प्रकार रघुवंश में करुण-रस की पुष्टि पुरुष (अज) की करुण गाथा से की है। महाकवि ने नारी एवं पुरुष के हृदय को समान रूप से झंकृत किया है। पुरुष के अभाव में जो विकलता नारी को होती है; ठीक उसी प्रकार स्त्री के अभाव में पुरुष की दशा भी विचारणीय हो जाती है। इसी तथ्य को महाकवि ने अज विलाप से ध्वनित किया है। यथा-रघु की मृत्यु के बाद उनके पुत्र अज ने राज्य का कार्यभार सम्भाला वे एक दिन इन्दुमती के साथ राज्योद्यान में विहार कर रहे थे तब उसी समय नारदमुनि गोकर्णधाम को महाकाल की पूजा के निमित्त आकाश मार्ग से जाते हैं। नारदमुनि के हाथ में वीणा थी उसी वीणा के अग्रभाग में स्वर्गीय पुष्पों से निर्मित माला लटक रही थी। वहीं माला वायु के वेग से वीणा से सरक जाती है तथा विहार कर रही इन्दुमती के वक्षस्थल पर जा गिरी। माला के प्रहार से रानी निष्प्राण हो जाती है, तब मृत अपनी पत्नी को देखकर अज अत्यन्त ही कारुणिक विलाप करता है-

विललाप स वाष्प गद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम्।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु।।[15]

अर्थात् उनका स्वाभाविक धैर्य खो गया, गला भर आया, नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी और वे फूट-फूटकर रोने लगे। यह स्वाभाविक ही है कि तीव्र आँच से जब लोहा पिघले जाता है तब मानव का कहना है क्या?

वे विलाप करते हुए कहते हैं-''हाय! क्या फूलों के प्रहार से भी किसी की मृत्यु हो सकती है? यदि ऐसा ही है तो कहना चाहिए कि दुर्भाग्य किसी भी रूप में मृत्यु को ला सकता है अथवा मालूम होता है कि विधाता कोमल वस्तु को नष्ट करने के लिए कोमल वस्तु का ही प्रयोग करता है क्योंकि देखा जाता है कि कोमल कमलिनी को नष्ट करने के लिए पाला ही पर्याप्त होता है-

अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तक:।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता।।[16]

पुन: वे कहते हैं कि

स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।।[17]

अर्थात् यदि यह माला प्राणों का हरण करने वाली है तो हृदय पर रखी हुई यह मेरे प्राणों का हरण क्यों नहीं कर रही है? फिर तो भला कहना ही पड़ेगा कि ईश्वर की इच्छा से कहीं विष भी अमृत हो जाता है तो कहीं अमृत भी विष हो जाता है।

राजा अज अपने दुर्भाग्य की प्रबलता को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि बिजली को माला के रूप में विधाता के द्वारा भेजा है जिसने पेड़ को तो छोड़ दिया किन्तु उसके साथ लिपटी लता को भस्म कर दिया।

अथवा मम भाग्य विप्लवादशनि: कल्पित एष वेधसा।
यदनेन तरुर्न पातित: क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता।।[18]

फिर राजा अज निष्प्राण इन्दुमती से पूछने लगते हैं-हे प्रिय, तुम तो अपराध हो जाने पर भी कभी मेरा तिरस्कार नहीं करती थी फिर आज क्यों मुझसे बोलना तक नहीं चाहती? क्या तुम मुझे मिथ्या प्रेमी समझती हो?

कृतवत्यसि नावधीरणामपराद्धेऽपि यदा चिरं मयि।
कथमेकपदे निरागसं जनभाष्यमिमं न मन्यसे।।[19]

कवीश्वर ने अचानक आनन्द के वातावरण में विपत्ति का पहाड़ गिराकर उसकी अनुभूति को कई गुना तीव्र कर दिया है। मानव का जीवन क्षणभंगुर है। अभी अज के मुख पर से सम्भोग की थकावट से उत्पन्न पसीने की बूँदें नहीं सूखीं; और इन्दुमती चल बसी-

सुरतश्रमसम्भृतो मुखे ध्रियते स्वेदलवोद्गमोऽपि ते।

अथ चास्तमिता त्वमात्मना धिगिमां देहभृतामसारताम्।।[20]

राजा अज कहता है कि-चन्द्रमा से रात्रि का पुन: मिलन हो जाता है। उसी तरह रात्रि के बीत जाने पर चकवा भी अपनी प्रेयसी चकवी को पा लेता है, अत: उन्हें वियोगजन्य दु:ख थोड़े ही समय के लिए होता है। परन्तु तुम तो मुझे सदा के लिए छोड़कर चली गई।

शशिनं पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचरं पतत्त्रिणम्।
इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमत्यन्तगता न मां दहे:।।[21]

राजा अज के दु:ख से प्रकृति भी दु:खी दिखाई देती है। यथा अशोक के झरते हुए पत्तों में अश्रुपात प्रतिबिम्बित हो रहा है-

स्मरतेव सशब्दनूपुरं चरणानुग्रहमन्यदुर्लभम्।
अमुना कुसुमाश्रुवर्षिणा त्वमशोकेन सुगात्रि! शोच्यते।।[22]

अर्थात् हे सुन्दरी! तुम्हारे झुनझुनाते बिच्छुओं वाले चरण की ठोकर किसी को नहीं मिलती थी, परन्तु तुमने बड़ी कृपा करके उस अशोक को ठोकर लगाई थी। अब उन तुम्हारे चरणों की कृपा का स्मरण करके अशोक वृक्ष फूलों के आँसू बरसाकर तुम्हारे लिए रो रहा है।

वे इन्दुमती को उपालम्भ देते हुए कहते हैं कि-'हे निर्दयी! तुम जाने की तैयारी में हो तथा यह तुम्हारा प्यारा पुत्र, तुम्हारी सखियाँ और मैं, सभी खड़े हैं।

समदु:खसुख: सखीजन: प्रतिपच्चन्द्रनिभोऽयमात्मज:।
अहमेकरसस्तथापि ते व्यवसाय: प्रतिपत्तिनिष्ठुर:।।[23]

इन्दुमती से विमुक्त होते ही राजा अज का धैर्य लुप्त हो गया, आनन्द जाता रहा, गाना-बजाना दु:खदायी हो गया, ऋतुएँ आकर्षणहीन हो गई, सजाव-श्रृंगार व्यर्थ हो गया और शय्या सूनी हो गई-

धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरतं गेयमृतुर्निरुत्सव:।
गतमाभरणप्रयोजनं परिशून्यं शयनीयमद्य मे।।[24]

ऐसा होना स्वाभाविक ही था क्योंकि वह तो उसकी **''गृहिणी सचिव: सखी मिथ: प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ''** (अर्थात् गृहिणी, मित्र, सखी और गानविद्या आदि ललित कलाओं में प्रिय शिष्या) थी।

महाकवि कालिदास ने जिस तरह कुमारसम्भव में करुण-रस की पुष्टि के लिए नारी (रति) की व्यथा को चित्रित किया है उसी प्रकार रघुवंश में करुण-रस की पुष्टि पुरुष (अज) की करुण गाथा से की है। महाकवि ने नारी एवं पुरुष के हृदय को समान रूप से झंकृत किया है। पुरुष के अभाव में जो विकलता नारी को होती है, ठीक उसी प्रकार स्त्री के अभाव में पुरुष की दशा भी विचारणीय हो जाती है। इसी तथ्य को महाकवि ने अज विलाप से ध्वनित किया है।

यहाँ करुण-रस की पुष्टि में इन्दुमती आलम्बन, अज आश्रय, प्रियतमा इन्दुमती का मृत गात्र उद्दीपन, अज का विलाप, इन्दुमती गुणस्मरण आदि अनुभाव तथा जड़ता, उन्माद, स्मृति, मोह आदि व्यभिचारिभाव एवं 'शोक' स्थायीभाव है। अत: करुण-रस की मार्मिक निष्पत्ति हुई है।

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने अपने दोनों अमर महाकाव्यों कुमारसम्भव एवं रघुवंश में रति विलाप एवं अज विलाप के माध्यम से करुण रस की साफल्येन पुष्टि की है।

संदर्भ

1. रूपकनिरूपणीयं भरत:। रसाधिकारिकं नन्दिकेश्वर:
   काव्यमीमांसा, पृ0 3, संस्करण द्वितीय वि0संवत् 2040, आचार्य शेषराजशर्मा रेग्मी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
2. श्रीमद्वाल्मीकिरामायण, बालकाण्ड: द्वितीय सर्ग श्लोक संख्या 15, सं0 2076 संस्करण पचपनवाँ, गीताप्रेस, गोरखपुर
3. ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत कारिका संख्या 5, तृतीय संस्करण 2014, आचार्यचण्डिकाप्रसाद शुक्ल, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

4. रस सिद्धान्त की शास्त्रीय समीक्षा, पृ0 5, संस्करण 2000, प्रो0 सुरजनदास स्वामी, हंसा प्रकाशन, जयपुर।
5. नाट्यशास्त्र, षष्ठ अध्याय, पृ0 324, संस्करण तृतीय, वि0सं0 2057, श्रीबाबूलाल शुक्ल, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी
6. साहित्यदर्पण, 3/4,5, संस्करण सप्दश, वि0सं0 2076, सन् 2019, आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
7. कुमासम्भवमहाकाव्यम्, 4/4, संस्करण तृतीय, 2006, श्री सुरेन्द्र प्रताप, नाग पब्लिशर्स दिल्ली
8. कुमासम्भवमहाकाव्यम्, 4/6, संस्करण तृतीय, 2006, श्री सुरेन्द्र प्रताप, नाग पब्लिशर्स दिल्ली
9. कुमासम्भवमहाकाव्यम्, 4/7, संस्करण तृतीय, 2006, श्री सुरेन्द्र प्रताप, नाग पब्लिशर्स दिल्ली
10. कुमासम्भवमहाकाव्यम्, 4/9, संस्करण तृतीय, 2006, श्री सुरेन्द्र प्रताप, नाग पब्लिशर्स दिल्ली
11. कुमासम्भवमहाकाव्यम्, 4/19, संस्करण तृतीय, 2006, श्री सुरेन्द्र प्रताप, नाग पब्लिशर्स दिल्ली
12. कुमासम्भवमहाकाव्यम्, 4/32, संस्करण तृतीय, 2006, श्री सुरेन्द्र प्रताप, नाग पब्लिशर्स दिल्ली
13. कुमासम्भवमहाकाव्यम्, 4/33, संस्करण तृतीय, 2006, श्री सुरेन्द्र प्रताप, नाग पब्लिशर्स दिल्ली
14. कुमासम्भवमहाकाव्यम्, 4/38, संस्करण तृतीय, 2006, श्री सुरेन्द्र प्रताप, नाग पब्लिशर्स दिल्ली
15. रघुवंशम् 8/43, संस्करण 2008 ई0, डॉ0 कृष्णमणि त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
16. रघुवंशम् 8/45, संस्करण 2008 ई0, डॉ0 कृष्णमणि त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
17. रघुवंशम् 8/46, संस्करण 2008 ई0, डॉ0 कृष्णमणि त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
18. रघुवंशम् 8/47, संस्करण 2008 ई0, डॉ0 कृष्णमणि त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
19. रघुवंशम् 8/48, संस्करण 2008 ई0, डॉ0 कृष्णमणि त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
20. रघुवंशम् 8/51, संस्करण 2008 ई0, डॉ0 कृष्णमणि त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
21. रघुवंशम् 8/56, संस्करण 2008 ई0, डॉ0 कृष्णमणि त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
22. रघुवंशम् 8/63, संस्करण 2008 ई0, डॉ0 कृष्णमणि त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
23. रघुवंशम् 8/64, संस्करण 2008 ई0, डॉ0 कृष्णमणि त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
24. रघुवंशम् 8/66, संस्करण 2008 ई0, डॉ0 कृष्णमणि त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी